समकालीन बाजारबाद के परिप्रेक्ष्य में : अन्धेर नगरी

रागिनी राठौर

शोधार्थी–हिन्दी विभाग
अ.प्र. सिंह वि. वि. रीवा (म.प्र.)

भूमण्डलीकरण की अवधारणा का चिल्ल–पों, आर्थिक–उदारीकरण का मकड़जाल, तकनीकी का तूफान, विज्ञापन का पल–पल बदलता रूप, विश्व बैंक का लोन देने का तजुर्बा, उपयोग करो और फेंको की संस्कृति, वस्तु खरीदते ही पुरानी हो जाने की मानसिकता, अपरिमित चाह, सब कुछ पा लेने की लालसा या 'पर्चेजिंग पावर' का प्रदर्शन, आधुनिकता या उत्तरआधुनिकता के नाम पर मूल्यों का क्षरण। संवेदना या रिश्तों का विकाऊपन, तूँ नहीं तो मेरा कोई और हो जायेगा की अवधारणा, पश्चिमी देशों कादुनिया को आर्थिक उपनिवेश या 'डस्टबिन' समझने की श्रृगांल वृत्ति। यह सब मिलकर एक नया रूप धारण करते हैं जिसे हम **'बाजारवाद'** कहते हैं, जो **जैनेन्द्रकुमार** के शब्दों में चिल्ला–चिल्ला कर कह रहा है – ''आओ मुझे लूटो और लूटो। सब भूल जाओ, मुझे देखो। मेरा रूप और किसके लिए है? मैं तुम्हारे लिए हूँ। नहीं कुछ चाहते हो, तो भी देखने में क्या हरज है? अजी आओ भी। इस आमंत्रण मे यह खूबी है कि आग्रह नहीं है आग्रह तिरस्कार जगाता है। लेकिन ऊँचे बाजार का आमंत्रण मूक होता है और उससे चाह जगती है। चाह मतलब अभाव।''[1]

'बाजार' आज हमारी सभ्यता है, संस्कृति है जो बाजार के अनुसार नहीं चलता वह **'अउट डेटेड'** है। पुराना है , रूढ़ि है। बाजार को जानना महत्वपूर्ण नहीं है, बाजार में बने रहना महत्वपूर्ण है क्योंकि वह पहचान का जरिया है। ''आज बाजार हमारे घर के भीतर, उसके चप्पे–चप्पे में आ गया है, हमारे जेहन और वजूद में विद्यमान है। बाजारू होना या

कहलाना आज गाली नहीं है, हमारे नए मध्यवर्ग की आन, बान, शान और पहचान है।''[2] हिन्दी साहित्य में 'बाजारवाद' की अवधारणा नई नहीं है, इसके मकड़जाल से महाकवि कबीर एवं सूर ने पहले ही आगाहकर दिया था। **कबीर** ने कहा – '' रमैया की दुलहिन ने लूटा बाजार'' या '' कबिरा खड़ा बाजार में लिए लुकाठी हाथ'' मतलब साफ है, बाजार कबीर को परेशान कर रहा था। वह बाजार में लुकाठी लेकर आये थे। आशय स्पष्ट है जो काम का नहीं है उसे जला दो या जिस घर में **'बाजार घर कर गया'** है उस घर को जलाने वाले ही कबीर के मित्र हो सकते थे आज एकदम उलट है जो बाजारू होगा वही मित्र होगा। सूर की गोपियाँ भी बाजार की माया को समझ रही थी इसीलिए घोषणा कर देती है – **'आयो घोष बड़ो व्यापारी'**

''अन्धेर नगरी चौपट्ट राजा टके सेर भाजी टके सेर खाजा' प्रहसन की रचना भारतेन्दु–हरिश्चन्द्र ने लोक में प्रचलित उक्ति को लेकर की थी लेकिन शीघ्र ही यह देश की स्वतंत्रता से जुड़ गया, अंग्रेजी शासन व्यवस्था से जुड़ गया। नाटक के प्रारंभ में **'वररूचि'** का एक संस्कृत श्लोक दिया गया है जिसका हिन्दी में अर्थ भी दिया गया है यथा– '' जो चन्दन, आम तथा चम्पा–वन को काटकर कीकर के वृक्ष की रक्षा करता है, जो हंस, मोर और कोयल के प्रति हिंसक होकर काक–लीला में रूचि लेता है, जो हाथी के बदले गधा खरीदता है और कपूर एवं कपास को (उनके श्वेत रंग के कारण) एक–सा मानता है और जहाँ के (गुणीजन) ऐसे ही विचार रखते हों, उस देश को नमस्कार।।''[3] इस कथन की तह पर जाने से **'अन्धेर नगरी'** का उद्देश्य स्पष्ट हो जाता है। भारतेन्दु को आने वाले 'बाजारवाद' की आँधी का आभास हो चुका था तभी तो प्रहसन के प्रारम्भ में ही पश्चिम की ओर जाने वाले शिष्य 'गोबरधनदास' को महन्त जी सावधान कर रहे थे। उन्हें पता था कि पश्चिम (यूरोप) का बाजार (अन्धेरनगरी) गोबरधनदास को संवेदना शून्य कर देगा। वरिष्ठ आलोचक **शंभुनाथ** के शब्दों में कहें तो – '' क्या रक्षणीय है – क्या त्याज्य, क्या सुरूचि है–क्या कुरूचि और बाजार में क्या खोकर क्या हासिल हो रहा है, इन सबका विवेक अंग्रेजी राज के जिन शिक्षित बुद्धिजीवियों में न था, उनका सांकेतिक ढंग से भारतेन्दु माखौल उड़ाते है। हर उपनिवेशवाद अपना बाजारवाद और इसका सम्मोहन लेकर आता है। इस सम्मोहन में ज्यादा फँसे थे गुणी

जन, अर्थात शिक्षित बुद्धिजीवी। यही वजह है कि वे कपूर और कपास में फर्क नहीं कर पा रहे थे, उपनिवेशवाद से प्रभेद स्थापित करने की जगह उसमें लगातार अपने को विसर्जित किए जा रहे थे।''[4] इस सम्मोहन को आज हवा दे रहा है 'विज्ञापन'। विज्ञापन और बाजार का अभिन्न सम्बन्ध है, जिस तरह से आज विज्ञापन के माध्यम से बाजार हमारे जीवन में बड़ी सरलता से प्रवेश कर जाता है उसी तरह से 'अन्धेर नगरी' में प्रवेश करते ही गोबरधनदास के ऊपर विज्ञापनीबाजार का हमला होता है यथा –

''कबाब गरमागरम मसालेदार–चौरासी मसाला बहत्तर आँच का–कबाब गरमागरम मसालेदार–खाय सो होंठ चाटै, न खाय सो जीभ काटै।''[5] और आज का विज्ञापन–दूध सी सफेदी/अब और भी सफेदी/और भी झागदार। लेकिन इस विज्ञापन का सच क्या है? हम सभी को पता है। युवा कवि **मृत्युंजय प्रभाकर** के शब्दों में कहें तो –'' विज्ञापनों में हर चीज पहले से अच्छी और बेहतर होती है/ कभी–कभी सोचता हूँ/कितना अच्छा होता/अगर यह दुनिया भी एक विज्ञापन होती।''[6]

बाजारवाद को पल्लवित पुष्पित करने के पीछे मनुष्य की स्वाद–संस्कृति भी है। मनुष्य कम समय में सब कुछ खा लेना चाहता है, हर व्यक्ति 'गोबरधनदास' बना हुआ है। लोगों के पेट ऐसे बढ़ रहे हैं जैसे मंदिर के 'गेट' हो। महन्त जी गोबरधनदास से कहते हैं–'' ऐसी नगरी में रहना उचित नहीं हैं, जहाँ टके सेर भाजी और टके ही सेर खाजा हो '' लेकिन गोबरधनदास गुरू की बात को नकारकर बाजारवाद की जहरीली स्वाद–संस्कृति की मृगतृष्णा में फंस ही जाता है और घोषणा कर देता है –'' मैं तो इस नगरी को छोड़कर नहीं जाऊँगा'' ''मैं तो यही कहता हूँ कि आप भी यही रहिए।'' **शंभुनाथ लिखते हैं** – ''सभ्यता की यात्रा आग में भुना मांस खाकर स्वाद–चेतना से शुरू हुई थी और अपने शिखर पर वह फिर स्वाद–संस्कृति के ही इर्दगिर्द है।''[7]

भारतेन्दु को 'बाजारवाद' की गहरी समझ थी। उनका 'अन्धेर नगरी' इसका जीवन्त दस्तावेज हैं। बाजार के बाजारूपन का क्या चित्रण किया है भारतेन्दु ने! ''जात लें जात, टके सेर जात। एक टका दो, हम अभी अपनी जात बेचते हैं। टके के वास्ते ब्राह्मण से धोबी हो

जाँय और धोबी को ब्राम्हण कर दें, टके के वास्ते जैसी कहो वैसी व्यवस्था दें। टके के वास्ते झूठ को सच करें। टके के वास्ते ब्राम्हण से मुसलमान, टके के वास्ते हिन्दू से क्रिस्तान। टके के वास्ते धर्म और प्रतिष्ठा दोनों बेचें, टके के वास्ते झूठी गवाही दें। टके के वास्ते पाप को पुण्य माने, टके के वास्ते नीच को भी पितामह बनावे। वेद धर्म कुल–मरजादा सचाई– लड़ाई सब टके सेर। ''[8] समकालीन बाजारवाद का सच भी यही है 'बाप बड़ा न भइया सबसे बड़ा रूपया' या कहिए आज 'रूपया खुदा भी है और खुदा से बढ़कर भी'।

'अन्धेर नगरी' के माध्यम से भारतेन्दु ने बाजारवाद के उस छद्म का भी उल्लेख किया है जिसमें गुण की नहीं रूप की कीमत होती है –

''सेत सेत सब एक से, जहाँ कपूर कपास।

ऐसे देस कुदेस में, कबहुँ न कीजै बास।।''[9] 'बास' करने से मना करते हैं साथ ही यह भी बताते हैं कि यह ऐसा भस्मासुर है जो अपने आका को भी बख्सने वाला नहीं है। चौपट्ट राजा यदि किसी गलत–फहमी में जी रहा हो कि गोबरधनदास ही–फाँसी पर चढ़ेगा तो गलत है क्योंकि गोबरधनदास को बचाने के लिए कोई न कोई महन्त आ भी सकता है लेकिन 'राजा' को कौन बचायेगा? दूसरों को बाजार के गिरफ्त में भेजने वाले राष्ट्र स्वतः एक न एक दिन इसके गिरफ्त में आ ही जायेंगे क्योंकि –

''जहाँ न धर्म न बुद्धि नहिं नीति न सुजन समाज।
ते ऐसहि आपुहि नसैं जैसे चौपट राज।।''[10]

गिरीश रस्तोगी का कथन है –''अन्धेर नगरी' अन्ध –व्यवस्था का प्रतीक है। चौपट राजा विवेकहीनता और न्याय दृष्टि के न होने का मूर्त स्वरूप है। उसका न्याय भी अन्धता का प्रमाण है क्योंकि बकरी की मृत्यु का दण्ड देने के लिए गोवर्धन पकड़ लिया गया, अर्थात् कोई भी दण्डित हो सकता है। अविवेकी, प्रमादी, मूल्यहीन राजा की परिणति तो भारतेन्दु ने दिखायी ही है लेकिन साथ ही उन्होंने गोवर्धन के द्वारा मनुष्य की लोभवृत्ति पर भी व्यंग्य किया है। लोभवृत्ति ही मनुष्य को 'अन्धेर नगरी की अन्धव्यवस्था, अमानवीयता में फँसाती है। अंग्रेजो की न्याय–दृष्टि और प्रणाली में भी शोषक–शोषित, अपराधी निरपराधी में कोई अन्तर नहीं था, आज भी हमारी न्याय–प्रणाली की यही स्थिति है। हमारी समकालीन शासन व्यवस्था

पर, शोषकवृत्ति पर तो, 'अन्धेर नगरी' व्यंग्य ही है पर यह अन्धेर नगरी विश्व के किसी भी कोने में हो सकती है।''[11]

गिरीश रस्तोगी ने अन्धेर नगरी के जिन तत्वों 'लोभ और भोग' की ओर संकेत किया है। यही बाजारबाद के मूल में है। हम कह सकते हैं कि –'' बाजारवाद के विरोधी भी/उतने ही बाजारू हैं/जितने बाजार के समर्थक ''[12] जब बाजार से बचा नहीं जा सकता तो फिर निदान क्या है? निदान है –'बाजार को सार्थकता प्रदान करना'। **जैनेन्द्रकुमार** के शब्दों में कहें तो – ''बाजार को सार्थकता भी वही मनुष्य देता है जो जानता है कि वह क्या चाहता है। और जो नहीं जानते कि वे क्या चाहते हैं, अपनी 'पर्चेंजिग पावर' के गर्व में अपने पैसे से केवल एक विनाशक शक्ति–शैतानी शक्ति, व्यंग्य की शक्ति ही बाजार को देते हैं। न तो वे बाजार से लाभ उठा सकते हैं, न उस बाजार को सच्चा लाभ दे सकते है। वे लोग बाजार का बाजारूपन बढ़ाते हैं। जिसका मतलब है कि कपट बढ़ाते हैं। कपट की बढ़ती का अर्थ परस्पर में सद्भाव की घटी।''[13]

'परस्पर में सद्भाव की घटी' की जो बात जैनेन्द्र कुमार ने बाद में की उसे भारतेन्दु 'अन्धेर नगरी' में पहले ही कह चुके थे। गोबरधनदास जैसे ही 'अन्धेर नगरी' के बाजार में प्रवेश करता है अपने गुरू 'महन्त' एवं गुरूभाई नारायणदास की बात मानने से इन्कार कर देता हैं अतः स्पष्ट हैं कि भारतेन्दु को 'बाजारवाद' की माया का भान था। फिलहाल मार्क्सवादी आलोचक **डॉ. शिवकुमार मिश्र** की बात से अपनी बात समाप्त कर रहा हूँ – '' इस बाजार और बाजार –तंत्र ने बहुत कुछ हमारे जीवन का बहुमूल्य बहुत कुछ लीला और पचाया है और बचे हुए को लीलने और पचाने पर आमादा है। हमारे जीवन मूल्य, स्मृतियाँ, परंपराएं, संस्कृति, भाषा, अस्मिता–विरासत का बहुत कुछ समा गया है उसके उदर में। बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ, बड़े व्यापारी–अपनी 'ठगौरी' लिए लुभा रहे हैं हमारे समाज के 35 करोड़ आबादी वाले इस मध्यवर्ग को और वह बेसुध होकर आंखे बंद करके धँस गया है बाजार के माया लोक में बिना यह जाने–सोचे कि उसका अंधी–अँधेरी सुरंग से वह कभी बाहर भी निकल पाएगा या नहीं। बहरहाल बाजार की माया अभी तो उसे इस कदर मोहे हुए है कि उसे कुछ भी सोचने की फुरसत नहीं।''[14]

संदर्भ –

1. 'आरोह'–भाग–02, एनसीईआरटी, प्रथम संस्करण 2007, पृष्ठ–87
2. मिश्र शिवकुमार–'भक्ति–आन्दोलन और भक्ति–काव्य', प्रथम लोक–भारती संस्करण 2010 इलाहाबाद, पृष्ठ–300–301
3. डॉ. गिरीश रस्तोगी–'भारतेन्दु और अन्धेर नगरी', अभिव्यक्ति प्रकाशन इलाहाबाद, संस्करण 1996, पृष्ठ–72
4. शंभुनाथ–'दुस्समय में साहित्य', वाणी प्रकाशन नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2002, पृष्ठ–50
5. डॉ. गिरीश रस्तोगी,–'भारतेन्दु और अन्धेर नगरी', अभिव्यक्ति प्रकाशन इलाहाबाद, संस्करण 1996, पृष्ठ–74
6. 'जनपथ'–सम्पादक–अनन्त कुमार सिंह, मार्च 2010, पृष्ठ–141
7. शंभुनाथ–'संस्कृति की उत्तरकथा', वाणी प्रकाशन नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2000, (भूमिका से)
8. डॉ. गिरीश रस्तोगी–भारतेन्दु और अन्धेर नगरी, अभिव्यक्ति प्रकाशन इलाहाबाद, संस्करण 1996, पृष्ठ–76
9. डॉ. गिरीश रस्तोगी–'भारतेन्दु और अन्धेर नगरी', अभिव्यक्ति प्रकाशन इलाहाबाद, संस्करण 1996, पृष्ठ–78
10. डॉ. गिरीश रस्तोगी–'भारतेन्दु और अन्धेर नगरी', अभिव्यक्ति प्रकाशन इलाहाबाद, संस्करण 1996,पृष्ठ–87
11. डॉ. गिरीश रस्तोगी–'भारतेन्दु और अन्धेर नगरी', अभिव्यक्ति प्रकाशन इलाहाबाद, संस्करण 1996, पृष्ठ–28
12. 'जनपथ', सम्पादक–अनन्त कुमार सिंह, मार्च 2010, पृष्ठ–141
13. 'आरोह'–भाग–02, एनसीईआरटी, प्रथम संस्करण 2007,पृष्ठ–91
14. मिश्र शिवकुमार–'भक्ति आन्दोलन और भक्ति–काव्य', प्रथम लोक भारती संस्करण,2010 इलाहाबाद, पृष्ठ–300

****